Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 10 | OCTOBER 2024

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की वर्तमान में भूमिका

डॉ. बीना महलावत [1]

[1] **पीडी कॉलेज ऑफ हायर एजुकेशन, भांकरोटा, अजमेर रोड, जयपुर, राजस्थान.**

ABSTRACT:

ऋषियों-महर्षियों की परम पवित्र तपस्थली भारत भूमि पर सदैव सन्त-महात्माओं, महायोगियों, धर्माचार्यों, महापुरुषों का अवतरण होता रहा है। यहाँ धर्म पर आधारित शिक्षा भारतीय जीवन का आवश्यक अंग एवं संस्कृति की आधारशिला रही है। धार्मिक शिक्षा से लोगों में अच्छे संस्कार उत्पन्न होते रहे हैं और संस्कृति हमारी चेतना को परिष्कृत करती रही है। इससे हमारे आचार-विचार व व्यवहार भी परिष्कृत होते रहे हैं। प्राचीन धार्मिक शिक्षा में धर्माचरणों, वर्णाश्रमों, संस्कारों, सामाजिक, सांस्कृतिक वैभवों, परवर्तीयुग, राष्ट्रीय चरित्र, पारस्परिक संवेदनाओं एवं स्थापित नैतिक आदर्शों के लिए भी पर्याप्त स्थान रहा है। उसके महत्व को इस रूप में माना गया है कि उसका उद्देश्य तत्कालीन समाज एवं परिस्थितियों में चरित्र निर्माण, धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति, सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण और संवर्धन, व्यावहारिक सामाजिक गृहस्थ जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति एवं भावी पीढ़ी के नवनिर्माण में निहित रहा है। प्राचीन शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था, छात्रों में दैवीगुणों व कर्तव्यपरायणता का विकास। हमारे महापुरुषों की प्रेरणा से भारतीय संस्कृति के मूल संस्कारों से सम्पन्न ब्रह्मचर्यव्रती स्नातक और विद्यार्थियों ने महामानव होने की प्रतिष्ठा प्राप्त की और अपने ज्ञान ज्योति से विश्व को आलोकित किया। वास्तव में शिक्षा ज्ञान के प्रचार-प्रसार का एक माध्यम है और इसका उद्देश्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जीवन के सभी मूल्यों को पहुँचाने तथा भावी पीढ़ी को आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करना है। भारत के सुनहरे भविष्य के कर्णधार हमारी पुष्पवाटिका के नवोदित कोमल कुसुम तरुणों के कन्धों पर ही परम्परा प्रदत्त, धर्म दर्शन, संस्कृति तथा साहस, शौर्य एवं पराक्रम से परिपूर्ण अमूल्य वैभव एवं तदनुरूप आचरण का गम्भीर दायित्व है और यह प्राचीन शिक्षा के आदर्शों पर ही सम्भव हो सकेगा।

KEYWORDS:

-

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
28th October 2024	31st October 2024

प्रस्तावना

प्राचीन काल में सर्वप्रथम शिक्षा शब्द का वर्णन ऋग्वेद में आया है। राहुल सांकृत्यायन[1] के अनुसार ऋग्वेद की रचना में शक्ति देने के लिए इन्द्र की प्रार्थना की गयी है। 600-1200 ई. में अनेक आश्रमों का उल्लेख किया गया है जिनमें रहने वाले साधु सन्त शिक्षा देने का कार्य करते थे। शिक्षा से सम्बन्धित ही विद्या शब्द आया है जो उपनिषद् में ब्रह्मज्ञान के लिए आया है।

शिक्षा हमारे अन्धविश्वास को मिटाती है। इससे दूसरों के दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है। फलस्वरूप व्यक्ति न्यायप्रिय और दूरदर्शी बनता है। शिक्षा से बुद्धि प्रखर, बोधक्षमता विकसित और विवेक पुष्ट होता है। इस प्रकार जीवन में त्रुटियों से हमारी रक्षा होती है।

शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में किया गया है। विद्या एक ऐसा अमूल्य धन है जिसे न परिवार के भाई बन्धु बाँट सकते हैं और न ही चोर चुरा सकते हैं। दान देने से भी इसका क्षय नहीं होता। अतः विद्या ही मनुष्य का महान धन है। विद्या मनुष्य को विनयशील सज्जन बनाती है, विनय से वह योग्य हो जाता है। मनुष्य को अपनी योग्यता से धन अर्जित होता है और धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसे व्यक्ति ही जीवन भर सुखी रहते हैं।

विद्या कल्पलता की भांति सभी प्रकार का लाभ पहुँचाती है। यह कष्टों से माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह हितकार्य में प्रेरित करती है, धर्म पत्नी की तरह दुख दूर कर मन को प्रसन्न करती है और वाणिज्य-व्यापार में सफलता देकर सम्पत्ति प्राप्त कराती है। इस तरह सब प्रकार के यश-प्रतिष्ठा आदि विद्या से ही मिलते हैं।[2] विद्या ही स्थायी धन है। प्राचीन भारतीय शिक्षा के मूल में अपने प्रिय राष्ट्र के अतिरिक्त संसार के सभी राष्ट्रों एवं प्राणियों के भी सुखी होने की बात कही गयी है।

ऋग्वेद के अनुसार देवपद तथा विद्या के अभिलाषी सरस्वती का आह्वान करते हैं। सरस्वती देवयन्तोह्वन्ते। ईशोपनिषद में बताया गया है कि विद्या से अमृततत्त्व प्राप्त होता है।ष् वेदव्यास ने ब्रह्मसूत्र में कहा है कि 'शास्त्रदृष्टया तूपदेशः'अर्थात शास्त्र दृष्टि से शिक्षा देनी चाहिए, न हि लोकदृष्टि से। शास्त्र की शिक्षा का लक्ष्य धन नहीं बल्कि अध्यात्म तत्व का ज्ञानोपार्जन करना था। अतः प्राचीन काल में भारतीय शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन द्वारा अध्यात्म तत्व का ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। यजुर्वेद में भगवान से प्रार्थना की गयी है कि हमें असत् से सत्, तप से नवज्योति तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

श्रीमदभागवत में कहा गया है कि पहले शरीर, सन्तान आदि में मन की अनाशक्ति सीखें। फिर भगवान के भक्तों से प्रेम कैसे करना चाहिए यह सीखें। इसके पश्चात प्राणियों के प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनय की निष्कपट भाव से शिक्षा ग्रहण करें।

वेदव्यास का कथन है कि श्रेष्ठ शिक्षा के लिए शुद्धतम बुद्धि ही आधार है। अमरकोष के धीवर्ग, ब्रह्मवर्ग, शब्दादि वर्ग, नाद्य वर्ग आदि में बुद्धि पर विशद विचार व्यक्त किया गया हैं बुद्धि के लिए प्रज्ञा, मनीषा, धी, मति, संविद आदि प्रसिद्ध पर्याय है। विशुद्ध बुद्धि में ही शिक्षा ठीक-ठीक प्रतिष्ठित होती है। बिना शिक्षा के भी बुद्धि, विद्या बुद्धि की जड़ता को दूर करती है, वाणी से सत्य का खिंचन करती है, सम्मान बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती, दिशाओं में कीर्ति फैलाती है, कल्पवृक्ष के समान विद्या क्या-क्या नहीं करती है। गीता में ज्ञानी को जीवन मुक्त कहा गया है। बाल्यकाल से ही सत-शास्त्रों की शिक्षा एवं अभ्यास से सत्संग एवं सद्गुणों द्वारा जीवमुक्ति सम्भव है। ऋग्वेद में वर्णित है कि शिक्षा द्वारा मस्तिष्क का विकास होता है और व्यक्ति की बुद्धि प्रखर हो जाती है जिससे वह अन्य मनुष्यों की तुलना में श्रेष्ठ हो जाता है।[3]

पंचतन्त्र में बताया गया है कि शिक्षा और विवेक के अभाव में मनुष्य निर्बल हो जाता है। नीतिशतक के अनुसार ज्ञान के अभाव में मनुष्य असहाय था और विद्या के अभाव में उसे पशुवत माना गया था। उस समय शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं था। हितोपदेश के अनुसार शिक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान से शंकाओं का समाधान होता है। कठिनाइयों का निराकरण होता है और मनुष्य जीवन के वास्तविक मूल्य को समझने में सक्षम होता है। शिक्षा एक ऐसी अमूल्य निधि है जिसके बिना मनुष्य पूर्ण नहीं होता है। अतः शिक्षा से प्राप्त ज्ञान को तीसरे नेत्र की संज्ञा दी गयी है। इससे मनुष्य में आत्म-निर्णय करने की शक्ति उत्पन्न होती है। महाभारत

में भी इसका वर्णन मिलता है।

सोमदेव शास्त्री ने भी शास्त्रों को तीसरा नेत्र माना है। विद्या लौकिक और पारलौकिक समस्त सुखों को देने वाली है। इस तरह इसे गुरूवों का भी गुरू माना गया है। शास्त्रों में शिक्षा और स्वाध्याय का फल पाण्डित्य भगवत् प्राप्ति कहा गया है। मनु ने स्वाध्याय द्वारा बुद्धि स्वास्थ्य, धन, कल्याण की अभिवृद्धि की बात कही है। इसमें उन्होंने न्याय, मीमांसा, वेद-पुराणादि को विशेष बुद्धिवर्धक माना है।ष् मान्धाता ने मात्र एक रात में, जन्मेजय ने कुल तीन दिन में और नाभाग ने केवल सात दिनों में पृथ्वी को जीत लिया था।

वेदव्यास कहते हैं कि मन-क्रम वचन से किसी से द्वेष न करना, सबसे प्रेम-अनुग्रह व दान करना ही शील है। विद्या से व्यक्तित्व का विकास होता है। सर्वत्र सम्मान मिलता है। विद्या नैसर्गिक शक्ति को पूर्ण बनाती है। विद्या विहीन व्यक्ति अस्तित्वहीन होता है। विद्या विदेशों में काम आती है। शिक्षा मनुष्य की प्रवृत्ति को मुक्त करने के लिए है। वेदशास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी जिनका सांसारिक सुखों से राग बना हुआ है उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है।

विवेकानन्द के शब्दों में यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती तो पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े सन्त और विश्वकोष ऋषि बन गये होते। आप्तजनों की शिक्षा का अनुपालन करते हुए हितकारी आचार-विचार का सेवन करने वाला व्यक्ति कभी रोगी नहीं होता। प्राचीनकाल में विद्या का फल प्रकाश था, विद्या का फल ज्ञान था। श्रीमदभागवत गीता के अनुसार मनुष्य प्राणियों के प्रति मैत्री, दया और विनय के भाव से शिक्षा ग्रहण करे। श्रीमदभागवत् में ज्ञान को परमार्थ की प्राप्ति का राजपथ बताया गया है।[4]

भारतीय शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था धार्मिक भावना का जागरण। बालक का मस्तिष्क बड़ा लचीला होता है। जो भाव उसके मन में इस समय बैठा दिया जाता है। वह चिरस्थायी बन जाता है। प्राचीन शिक्षा में यह बताया गया है कि धर्म ही आहत होने पर मनुष्य को मारता है और वही रक्षित होने पर रक्षा करता है। धर्म के द्वारा ऋषिगण इस भवसागर से पार हो गये। सम्पूर्ण लोक धर्म के आधार पर ही टिके हुए हैं।

महाभारत में बताया गया है कि जिनके विद्या, कुल और कर्म ये तीनों शुद्ध हों, उन्हीं साधु पुरुषों की सेवा में हमें रहना चाहिए। धार्मिक भावना में वृद्धि व उसका संरक्षण ही भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बताया गया है। इसके लिए वृत्त, प्रार्थना, त्योहार आदि पर बल दिया गया है जिसके द्वारा बालक का अध्यात्मिक विकास सम्भव था और भौतिकवादिता के साथ-साथ सदाचार की भावना भी प्रखर होती थी पर इसका अर्थ यह नहीं कि विद्यार्थी का एकमात्र कार्य था केवल धर्म की साधना में संसार का त्याग करना। इसके लिए तो थोड़ी संख्या में नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे जो जीवन पर्यन्त गुरूकुल में ही रहते थे। ब्रह्मचर्यरूपी तपोबल से ही विद्वान लोगों ने मृत्यु को जीता।

भारतीय शिक्षा का धर्म के साथ अभिन्न सम्बन्ध रहा था। धर्म विहीन शिक्षा को विष पुन्ज माना गया था। यही कारण है कि बाद में धर्म ही शिक्षा का आधार बना रहा। युवा ब्रह्मचारी को धर्म की भावनाओं से अनुप्राणित करने के लिए ही संस्कारों एवं व्रतों के पालन का विधान बताया गया है। उस समय आध्यात्मिक प्रकाश से रहित शिक्षा को शिक्षा की मान्यता नहीं दी गयी थी। भोज प्रबन्ध में कहा गया है कि धर्म से विमुख मनुष्य बलवान होकर भी असमर्थ ज्ञानी होकर भी मूर्ख और धनवान होते हुए भी निर्धन कहलाता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों में विद्यार्थियों को ग्रन्थों के साथ-साथ उन्हें चरित्रवान होने की दिशा में अग्रसर किया जाता था। उन्हें परिश्रमशील संयमी व उद्यमी बनाया जाता था और उनमें आत्मसम्मान, आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता की भावना का विकास कराया जाता था।

शिक्षा में अनुशासन व चरित्र निर्माण की पुष्टि बाण ने भी की है। चीनी यात्री हवेनसांग ने भी भारतीयों के उत्तम व्यवहार, श्रेष्ठ चरित्र तथा नैतिकता का वर्णन किया है। तत्कालीन विद्यार्थियों में आत्मसंयम व सादगी, प्रधान थी। सादा जीवन उच्च विचार ही उनकी शिक्षा के प्रतिफल थे। कामन्दीय नीतिसार के अनुसार शास्त्रों के अध्ययन से आत्मनिष्ठता की क्षमता उत्पन्न होती है और विनयशीलता में वृद्धि हो जाती है।

चरित्र में दृढ़ता किन्तु व्यवहार में कोमलता या एक व्यक्ति का महत्वपूर्ण गुण माना जाता था। अनुशासन को चरित्र निर्माण की कुन्जी माना गया था। भारतीय शिक्षा में चरित्र निर्माण की प्रवृत्ति की तुलना अल्तेकर ने लोक विचार से की है जो कि इस मत का पोषक है कि केवल बौद्धिक विकास इतने महत्व का नहीं है जितना कि चारित्रिक विकास। चरित्र पांडित्य से अधिक महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति का सर्वांगीण विकास ही प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य था। उस समय प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत प्रगति पर आचार्य ध्यान रखता था।

अतः यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत अनुशासन तथा चारित्रिक विकास पर पर्याप्त बल दिया जाता था। विद्यार्थी को सादगी, सच्चाई, नम्रता, स्वच्छता और आत्म-चेतन का अभ्यास कराया जाता था। और शिक्षा का निर्धारण समाज के गौरव गरिमा के अनुरूप किया जाता था। शिक्षा काल में ही मनुष्य को नैतिकता में उसकी आस्था का विकास तथा मानवता के प्रति सौहार्द की भावना का पोषण करना चाहिए साथ ही इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अपने मन पर अंकुश लगाने की शक्ति का भी उसमें विकास होता रहे तभी वह अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनकर उसके अनुसार आचरण कर सकेगा यह उद्देश्य प्राचीन शिक्षा में निहित था।

विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान रखने पर भी यदि व्यक्ति में अर्तदृष्टि का विकास नहीं हुआ तो वह मूर्ख ही है, क्रियावान पुरूष ही सच्चे अर्थों में शिक्षित है। शिक्षा उदरपूर्ति की समस्या भी हल करती है। हो सकता है इससे हम धनी न हों क्योंकि धन प्राप्ति प्रायः भाग्य पर निर्भर करती है और यदि कुछ शब्दों को रट लेने मात्र से शुक भी भोजन प्राप्त कर सकता है, तो एक विद्वान भला कैसे भूखों मर सकता है। किन्तु शिक्षा को कभी जीविका का साधन मात्र नहीं माना गया। प्राचीन भारत में ऐसे मत वालों की बहुत निन्दा की गयी है, जो इसे जीविका का साधन मात्र मानते हैं।

प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना था कि वह समाज व राष्ट्र का एक योग्य, कर्मठ और धर्मनिष्ठ सदस्य बन सके। विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करने की विधि इस प्रकार सिखायी जाती थी कि वह विविध यज्ञों की क्रिया ज्ञान सुरक्षित रखकर अगली पीढ़ी में उसका प्रतिपादन करने में समर्थ होते थे।[5]

राजशेखर ने इस प्रकार की शिक्षा को पैतृक व क्रमागत बताया है। इस तरह हर पीढ़ी अपने पूर्वजों की परम्परा को नई पीढ़ी को सिखाते थे। यह नियम और मान्यता ऋषियों-मुनियों पर भी समान रूप से लागू होती थी। क्योंकि वे एक अच्छे गृहस्थ होते थे। राष्ट्रीय परम्परा और संस्कृति का संरक्षण और प्रचार प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। भारतीय शिक्षा पद्धति प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा का संरक्षण करने में शताब्दियों तक सफल रही।[6]

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केंद्रित किया तथा विनम्रता, सच्चाई, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सम्मान जैसे मूल्यों पर बल दिया। भारत में शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिकता को प्राप्त करने योग्य और जीवन में सहायक है। इस प्रकार, नई शिक्षा नीति 2020 ने न केवल प्राचीन भारत के गौरवशाली अतीत को मान्यता दी है, बल्कि प्राचीन भारत के विद्वानों जैसे-चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, मैत्रेयी, गार्गी आदि के विचारों एवं कार्यों को वर्तमान पाठ्यक्रम में प्री-स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शामिल करने की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

संपूर्ण वैदिक-वांगमय, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतिग्रंथ, दर्शन, धर्मग्रंथ, काव्य, नाटक, व्याकरण तथा ज्योतिष शास्त्र संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होकर इनकी महिमा को बढ़ाते हैं, जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति की रक्षा करने में पूर्णतरू सहायक सिद्ध होते हैं। संस्कृत से ही संस्कारवान समाज का निर्माण होता है। संस्कारों से कायिक, वाचिक, मानसिक पवित्रता के साथ-साथ पर्यावरण भी स्वच्छ होता है। संस्कारों का वैज्ञानिक महत्व भी है। इसकी वैज्ञानिकता को नासा ने 1987 में ही संस्कृत को कंप्यूटर के लिए सर्वोत्तम भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की, जिसका कारण संस्कृत भाषा को अंतरिक्ष में संदेश प्रेषण के लिए सबसे उत्कृष्ट माना है। आज भी अमेरिका, जर्मनी आदि अनेक देश संस्कृत के क्षेत्र में नित-नवीन अनुसंधान कार्य करके इसकी यशोवृद्धि में प्रयत्नशील हैं। बदलते सामाजिक परिवेश और भारतीय मूल्यों के बीच हमारी शिक्षा व्यवस्था को समावेशी बनाना अत्यावश्यक है। यह समावेशी व्यवस्था भारतीय प्राचीन ज्ञान परंपरा को लिए बिना नहीं चल सकती है, क्योंकि एक तरफ तो हम आधुनिकता के दौर में सरपट भागे जा रहे हैं, वहीं हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान विज्ञान परंपरा को भूलते जा रहे हैं। इस अंधानुकरण में हमारी वही स्थिति हो चुकी है जैसाकि उपनिषदों में कहा गया है कि यदि दृष्टिहीन को रास्ता दिखाने वाला भी दृष्टिहीन हो तो लक्ष्य कैसे प्राप्त हो सकेगा।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में हमारे भारतीय मूल्यों और ज्ञान की स्पष्ट झलक दिखाई दे सके, इसी उपक्रम में एनआइओएस यानी राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान विभिन्न माध्यमों से ललित कला और संस्कृति की शिक्षा में निरंतर प्रयासरत है। यह कला एकीकरण को विभिन्न कार्यक्रमों में पाठ्येतर शैक्षणिक उपागम के रूप में प्रस्तुत करता है।

हमारे शिक्षार्थियों को योग का ज्ञान देने के लिए मुक्त बेसिक स्तर पर योग विषय का पाठ्यक्रम भी उपलब्ध है। इस प्रकार हमारे देश के भविष्य का निर्माण करने वाली भावी पीढ़ी के लिए यह अभ्यास बहुत महत्वपूर्ण हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना देश के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे देश की पहचान बनती है। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इसके महत्व को समझते हुए तथा विदेश के साथ सांस्कृतिक संबंध विकसित करने के लिए एनआइओएस ने प्रवासी अध्ययन केंद्र स्थापित किया है। इसका लक्ष्य वसुधैव कुटुंब की भावना के आलोक में शांति, बहुलता और सार्वभौमिक बंधुत्व को बढ़ावा देना है। शिक्षा जैसे सशक्त माध्यम के साथ एनआइओएस का यह प्रवासी अध्ययन केंद्र अन्य देशों में भी भारतीय प्रवासी केंद्रों को सशक्त करने के लिए कार्य करेगा। यह भारतीय ज्ञान परंपरा को एक गत्यात्मक तथा व्यापक जीवन प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करते हुए भारत की गौरवशाली संस्कृति और परंपरा को स्थापित करेगा।[7]

भारत के नई शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि उसे भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में तैयार किया गया है। यह अपने आप में अत्यंत आशाजनक है। इसके क्रियान्वयन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होगा कि शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम निर्माण के प्रति दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन किया जाए। यह नहीं होना चाहिए कि कमरे के अंदर बिठा कर भावी अध्यापकों को तीन-चार घंटे तक लगातार भाषण दिए जाएं और लिखित परीक्षा द्वारा उनकी उपलब्धि का आकलन किया जाए।

यह भी तो संभव है कि वे पाठ्य सामग्री पढ़कर आएं और अपने अध्यापकों से चर्चा करें और सब मिलकर भी करें। अध्यापकों का अधिकांश समय स्कूल के बच्चों के साथ खुले वातावरण में क्यों न बिताया जाए। उनके साथ वे स्वयं ही सीख जाएंगे कि बच्चों की आवश्यकताएं क्या हैं और उनकी पूर्ति के लिए किसी भी विषय पर निष्पादन करते समय क्या-क्या आवश्यक तैयारी करनी चाहिए।

रवींद्र नाथ ने बच्चों से एक वादा किया- 'आप मेरे सान्निध्य में आए हैं, मैं पूरा प्रयत्न करूंगा कि मैं अपने पुरखों और ऋषियों, मुनियों द्वारा दिखाए गए मार्ग पर ही चलूं और उससे विचलित न होऊं।' उनके ये शब्द किसी भी अध्यापक और पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तक बनाने वालों के लिए संपूर्ण प्रेरणा प्रदान कर और एक नया रास्ता खोल सकते हैं। अगर अध्यापक और विशेषकर अध्यापक-शिक्षक अपने आचरण को रवींद्रवीं नाथ द्वारा इंगित रास्ते पर ढाल लें तो निश्चित रूप से भारत के लोग सदाचरण के मार्ग पर चल सकेंगे।

कोई भी बड़ा परिवर्तन तभी संभव होगा जब उसका प्रारंभ स्कूलों से किया जाए। यानी दृष्टिकोण परिवर्तन का सबसे विश्वस्त उपाय शिक्षा द्वारा ही संभव है और इसकी शुरुआत उसी समय से होनी चाहिए जब बच्चों की शिक्षा शुरू की जाती है। ऐसा करने के लिए सबसे पहले भारत को इस विश्वास को पुनः जागृत करना होगा कि उसके अंदर अपनी ज्ञानार्जन परंपरा की शक्ति द्वारा न केवल देश की समस्याएं सुलझाने की क्षमता है, बल्कि विश्व स्तर पर भय, आशंका, अविश्वास और हिंसा की वर्तमान स्थिति को बदल सकने की पूरी योग्यता है।

इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए विश्व के समक्ष भारत का ऐसा चित्र प्रस्तुत करना होगा, जिसमें उसकी परंपरागत विविधता की स्वीकार्यता का स्पष्ट दर्शन विश्व को हो सके। विश्व में कोई ऐसे हों जितना कि भारत में है।

भारत ने अपने इतिहास में यह भी सिद्ध किया है कि उसने कभी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया, अत्याचार और शोषण नहीं किया, बल्कि हर जगह अपने ज्ञान और वैश्विक सदाचरण तथा मूल्य आधारित जीवन जीने की आवश्यकता का संदेश ही पहुंचाया। स्कूल स्तर पर बड़े परिवर्तन लाने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व विश्वविद्यालयों का भी होगा।

सामान्यतया माना जाता है कि किसी भी विश्वविद्यालय का उत्तरदायित्व वहां पर ज्ञान प्राप्त करने का उचित वातावरण तैयार करना होता है। शिक्षा देना इसके बाद आता है। यही अवधारणा शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालयों और स्कूलों तक साकार करनी होगी और इसे नियमित रूप से व्यावहारिकता के साथ लागू करना होगा।

इस समय विश्व में अनेक कारणों से जो परिस्थितियां बनी हैं, उनमें भारतीयों की क्षमता, उनके आचरण और उनके इतिहास के आधार पर निष्पक्ष विचार रखने वाले विश्व के सभी महत्त्वपूर्ण देश बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं कर रहे हैं। भारत के युवाओं ने अपनी बौद्धिक क्षमता से विश्व भर में अपने लिए एक सम्माननीय स्थान निर्मित कर लिया है।

देश के हर शिक्षा संस्थान- स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक- का अगला लक्ष्य ऐसे अध्यापक प्रशिक्षित करने का होना चाहिए, जो भारत के लोगों के जीवन से जुड़ाव को प्राथमिकता मान कर कार्य करें। अगर देश इसमें सफल हो जाता है, तो वैश्विक स्तर पर भारत की उपस्थिति स्वतरू ही स्वीकार्य हो जाएगी। उसके लिए प्रयास नहीं करना पड़ेगा।

जब शिक्षा संस्थान इस प्राथमिकता को लेकर अपनी कार्य पद्धति में आवश्यक परिवर्तन करेंगे, तो नवाचार बढ़ने के नए रास्ते स्वतरू ही खुलेंगे लें । हर व्यक्ति को शिक्षा ही नहीं मिलेगी, ऐसे कौशल भी प्राप्त हो सकेंगे, जिनसे वह आत्मनिर्भर हो सकेगा और अपनी क्रियात्मकता के आधार पर जीवन की दिशा तय करने में भी सक्षम होगा।[8]

निष्कर्षतः

शिक्षा विद्यार्थी को सादा जीवन एवं उच्च विचार का आदर्श सामने रखता था। आत्मसंयम एवं आत्मानुशासन की प्रवृत्तियां भी व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती थीं। उसे अपने इंद्रियों की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखना पड़ता था। आहार, विहार, वस्त्र, आचरण आदि सभी को उसे नियमित करना होता था। शुद्धता एवं सादगी उसके जीवन के मुख्य ध्येय थे। भारतीय चिंतकों ने विद्यार्थी की प्रवृत्तियों एवं भावनाओं को अनावश्यक दबाने का प्रयास नहीं किया। आत्म-नियंत्रण एवं आत्मानुशासन से उनका तात्पर्य यथोचित एवं यथावश्यक आहार, विहार, वस्त्राभरण, निद्रा, शयन आदि से था। इससे विद्यार्थी को उच्छृंखल होने से बचाया जाता था। अध्यापक विद्यार्थी को प्रताड़ित करने के बजाय प्रेम एवं सद्भावना द्वारा सन्मार्ग में प्रवृत्त करता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक सुख एवं निपुणता को प्रोत्साहन प्रदान करना भी था। केवल संस्कृति अथवा मानसिकता और बौद्धिक शक्तियों को विकसित करने के लिए ही शिक्षा नहीं दी जाती थी, अपितु इसका मुख्य ध्येय विभिन्न उद्योगों, व्यवसायों आदि में लोगों को दक्ष बनाना था। भारतीय शिक्षा पद्धति ने सदैव यह उद्देश्य अपने समक्ष रखा कि नई पीढ़ी के युवकों को उनके आनुवंशिक व्यवसायों में कुशल बनाया जाए। सभी प्रकार के कार्यों के लिए शिक्षा देने की व्यवस्था प्राचीन भारत में थी। कार्य विभाजन के द्वारा विभिन्न शिल्पों और व्यवसायों में लोग निपुणता प्राप्त करने लगे जिससे सामाजिक प्रगति को बल मिला तथा समाज में संतुलन भी बना रहा। आर्य जाति की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य वैदिक साहित्य को सुरक्षित बनाए रखना था। भारत में वेद तथा अन्य धर्म ग्रंथ जिस प्रकार से आज तक जीवित हैं, उसकी समता किसी अन्य सभ्यता में देखने को नहीं मिलती है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के उद्देश्य अत्यंत उच्च कोटि के थे।

REFERENCES

1. अल्तेकर, ए.एस., एजुकेशन इन एंशेण्ट इण्डिया, बनारस, 1998, पृ. 38

2. कुमार, कृष्ण, प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2017, पृ. 22-23

3. पाठक, श्याम बिहारी, प्राचीन भारत में शिक्षा, कला प्रकाशन, 2010, पृ. 64

4. पाठक, रमेश चन्द, प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा, 2009, पृ. 21-22

5. देवी, गीता, उत्तर भारत में शिक्षा-व्यवस्था, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1988, पृ. 87

6. पाठक, श्याम बिहारी, प्राचीन भारत में शिक्षा, कला प्रकाशन, 2010, पृ. 17-18

7. झा, कन्हैया आलेख ''शिक्षा प्रणाली में भारतीय ज्ञान परंपरा की अनिवार्यता'', दैनिक जागरण, 25 जनवरी, 2022

8. राजपूत, जगमोहन सिंह, भारत की शिक्षा पद्धति को भारतीय संस्कृति और ज्ञानार्जन परंपरा पर आधारित बनाने की जरूरत, जनसत्ता समाचार पत्र, 26 नवम्बर, 2023